दुनिया भर में ट्रंपवाद की जीत

ब्रेट स्टीफेंस

© The New York Times 2019

भारत में नरेंद्र मोदी हिंदुत्व की लहर पर फिर भारी मतों से विजयी हुए। ऑस्ट्रेलिया, फिलीपींस, इस्राइल, ब्राजील आदि के चुनावी नतीजे भी ट्रंपवाद की जीत के बारे में बताते हैं। इन्हें सिर्फ दक्षिणपंथ की विजय नहीं कह सकते। यह प्रवासियों पर भूमिपुत्रों को, वैश्विक हितों पर राष्ट्रीय हितों को तथा अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों को तरजीह देने की नीति की जीत है।

भारत में पिछले छह सप्ताहों में साठ करोड़ से अधिक मतदाताओं ने वोट डाले। डोनाल्ड ट्रंप की जीत हुई। एक सप्ताह पहले ऑस्ट्रेलिया के लाखों लाखों ने वोट डाले। डोनाल्ड ट्रंप जीते। यूरोपीय संघ के सदस्य देशों के नागरिक यूरोपीय संसद् के लिए, जो शक्तिहीन भले हो, लेकिन जिसका प्रतीकात्मक महत्व बहुत है, वोट डाल रहे हैं। वहां भी ट्रंपवाद की छाप नजर आएगी। फिलीपींस में इसी महीने हुआ चुनाव, जिसमें रोड्रिगो ड्यूटर्टी की सत्ता और मजबूत हुई, ट्रंपवाद की एक और जीत था। यही बात इस्राइल में बेंजामिन नेतन्याहू के पिछले महीने, ब्राजील में जायर बोलसोनारो के विगत अक्तूबर में चुने जाने और उससे कुछ महीने पहले इटली में सैलविनी के चुने जाने के बारे में कही जा सकती है। ब्रिटेन में अगले महीने टेरीजा मे की जगह बोरिस जॉनसन के प्रधानमंत्री चुने जाने को भी ट्रंपवाद की विजय माना जाएगा।

वर्ष 2016 में अल्बेनी, न्यूयॉर्क की एक रैली में ट्रंप ने चेतावनी देते हुए कहा था, 'हम इतनी बड़ी संख्या में जीतेंगे कि आप जीतते हुए थक जाएंगे। और फिर आप कहेंगे, कृपया अब रहने दीजिए। आपकी जीत इतनी बड़ी है कि हम मुकाबला नहीं कर पा रहे।'

हाल-हाल में इतने देशों में जो चुनाव हुए, उनमें ट्रंप कहीं लड़ नहीं रह रहे थे। भारत में नरेंद्र मोदी हिंदुत्व की लहर और मुस्लिम-विरोध के नाम पर फिर चुने गए। ऑस्ट्रेलिया में स्कॉट मॉरिसन ने पर्यावरण को बनाए रखने की भारी कीमत का विरोध करने और रोजगार के क्षेत्र में हुए नुकसान के बावजूद चौंकाने वाली जीत दर्ज की। ब्रिटेन में ट्रंप जैसी सोच वाले निगेल फैरेग को लगता है कि उन्हें और उनकी ब्रेक्जिट पार्टी को यूरोपीय चुनावों में जीत हासिल होगी। ब्राजील और फिलीपींस में जीते बोलसोनारो और ड्यूटर्टी मानवाधिकार और कानून के राज का कम ही सम्मान करते हैं, इसके बावजूद उनकी राजनीतिक छवि मजबूत है।

इन सभी जीतों को सिर्फ दक्षिणपंथ की विजय नहीं कह सकते। यह प्रवासियों पर भूमिपुत्रों को, वैश्विक हितों पर राष्ट्रीय और स्थानीय हितों को तथा नस्लीय या लैंगिक अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों को तरजीह देने की नीति की विजय है। यह उन राजनेताओं के खिलाफ विद्रोह की जीत है, जो दुनिया को बेहतर बनाने

की थोड़ी कीमत लोगों से वसूलना चाहते हैं। जब पिछले साल फ्रांस में मैक्रों ने गैस के दाम बढ़ाने की कोशिश की, ताकि पर्यावरण को बचाने की बढ़ी लागत की भरपाई की जा सके, तो उसका भारी विरोध हुआ। विरोधियों का नारा था, 'मैकों को दुनिया के खत्म हो जाने की चिंता है, जबकि हमें इस महीने के ठीक-ठाक तरीके से गुजर जाने की चिंता है।'

यह ताकतवर राजनीति का दौर है, और इसीलिए मुझे आशंका है कि आर्थिक स्थिति खराब होने या विदेश नीति के क्षेत्र में धक्का लगने के बावजूद ट्रंप अगले साल दोबारा चुने जाएंगे। आप यह सोचने के लिए स्वतंत्र हैं, जैसा कि मैं सोचता हूं, कि ट्रंप प्रशासन का कामकाज शर्मनाक है। आप यह भी सोच सकते हैं कि रूढ़िवादी उदारवादियों की तुलना में ज्यादा दोषी हैं।

लेकिन वामपंथियों की मुश्किलें ज्यादा गहरी हैं। एक तो इसलिए कि इन्होंने राजनीति को स्वार्थ के खिलाफ संघर्ष के रूप में देखा। और इसलिए भी कि इन्होंने जलवायु परिवर्तन और प्रवासन जैसे बड़े मुद्दों के प्रति गहरी दिलचस्पी दिखाते हुए उनमें भारी निवेश किया। मौजूदा दौर में यही कहा जा सकता है कि ये मुद्दे एक के बाद एक राजनीतिक पराजय ही दिलाएंगे, भले ही वामपंथी अपनी नैतिक श्रेष्ठता से थोड़े खुश हो लें।

उदारवादी अब उसी तरफ दौड़ रहे हैं, जहां वे 1970 और 1980 के दशक में जाते थे। लेकिन 1980 के दशक के विपरीत, जब आर्थिक स्वतंत्रता और यूरोपीय एकता पर रूढ़िवादियों का मजबूत सिद्धांत था, वामपंथी अब घिसटते हुए नए दक्षिणपंथियों के साथ चलते दिख रहे हैं, जो तेजी से भूमिपुत्रवादी, अनुदार, कानून की परवाह न करने वाले और ताकत की राजनीति के पर्याय होते जा रहे हैं। पिछले तीस साल में सबसे सफल वाम मध्यमार्गी नेताओं की बात करें, तो बिल क्लिंटन और टोनी ब्लेयर के नाम सामने आएंगे। वे मुक्त बाजार के लाभ, कानून-व्यवस्था के महत्व, पश्चिमी मूल्यों की सर्वोच्चता को समझते थे और आम आदमी के नैतिक बोध का सम्मान करते थे। व्यक्तिगत तौर पर उनमें अनेक कमियां थीं, तो राजनीतिक विफलताएं भी कम नहीं थीं। लेकिन उनमें से किसी ने कभी ट्रंप जैसी राजनीति का परिचय नहीं दिया।

आनेवाले वर्षों में जो भी अमेरिका में ट्रंप और अमेरिका से बाहर ट्रंपवादियों को पराजित करने की इच्छा रखते हैं, उन्हें ईमानदारी के साथ अपनी शानदार चुनावी सफलताओं का ब्योरा देना होगा। यह बहुत बार कहा जा चुका है कि अमेरिका और अमेरिका से बाहर ट्रंपवाद की जीत में बड़बोलेपन और कट्टरता ने बड़ी भूमिका निभाई है, जिससे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असुरक्षा पैदा हुई है। लेकिन इस बारे में कम ही चर्चा होती है कि ट्रंपवाद की लगातार जीत की एक वजह मजबूत विपक्षी चेहरे का न होना भी है।

बिलावल की इफ्तार पार्टी में मरियम का आना

मरिआना बाबर

पाकिस्तान की वरिष्ठ पत्रकार

वह किसी राजकुमारी की तरह लगती थीं। कुछ लोग कहते थे कि वह किसी मॉडल या दुल्हन जैसी लगती थी। उसकी सुंदरता को देखकर कोई यकीन नहीं कर सकता था कि वह उम्र के चौथे दशक में है और एक बच्चे की दादी हैं। वह गाड़ी ड्राइव करते हुए इस्लामाबाद के एक अत्यंत मशहूर पते तक पहुंची थी। बिलावल हाउस। उसकी काले रंग की लिमोजीन पार्टी कार्यकर्ताओं द्वारा फेकी गई गुलाब की पंखुड़ियों से ढंकी हुई थी। पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी के प्रमुख बिलावल भुट्टो जरदारी खुद उनकी अगवानी करने के लिए आए और पाश्चात्य ढंग से उन्होंने अपना दायां हाथ दिल पर रखकर उनका इस्तकबाल किया। हाथ नहीं मिलाया।

खूबसूरत सफेद जोड़े में यह पाकिस्तान मुस्लिम लीग (एन) की उपाध्यक्ष और पूर्व प्रधानमंत्री नवाज शरीफ की बेटी मरियम नवाज शरीफ थीं, जिन्होंने मुस्कराकर उनका अभिवादन किया और उनके साथ अंदर चली गईं।

यह मौका था बिलावट भुट्टो के इस्लामाबाद स्थित निवास पर इफ्तार डिप्लोमेसी डिनर का। बिलावल ने तमाम बड़ी विपक्षी पार्टियों के नेताओं को आमंत्रित किया था। लोकप्रिय आंदोलन पश्तून तहाफुज मूवमेंट (पीटीएम) के प्रतिनिधि और सांसद भी इसमें शामिल हुए। इनमें सबसे बुजुर्ग थे पीएमएल-एन के नेता मौलाना फजलूर रहमान, जो कि किसी भी दक्षिण पंथी पार्टी के नेताओं की तुलना में कहीं अधिक सेक्यूलर हैं। हालांकि पिछले चुनाव में वह बुरी तरह पराजित हो गए थे और संसद में उनकी पार्टी का एक भी प्रतिनिधि नहीं है।

पीपीपी और पीएमएल (एन) अतीत में एक दूसरे के कट्टर विरोधी रहे और एक दूसरे के खिलाफ चुनाव लड़ा है। जुल्फीकार अली भुट्टो और नवाज शरीफ की विचारधारा में जमीन आसमान का फर्क है।

इस इफ्तार दावत में तमाम विपक्षी दलों की मौजूदगी से प्रधानमंत्री इमरान खान और उनके मंत्रिमंडल के सहयोगियों को काफी धक्का लगा और वह आज तक इस इफ्तार डिप्लोमेसी की आलोचना कर रहे हैं। न केवल इमरान बल्कि उनके कई मंत्री ट्वीट कर या प्रेस ब्रीफिंग के जरिये विपक्ष को निशाना बना रहे हैं। दरअसल ऐसे समय जब महंगाई और जरूरी सेवाओं के बिल बेतहाशा बढ़ गए हैं, लोगो में सरकार के खिलाफ खासी नाराजगी है, उनका परेशान होना स्वाभाविक है। पीपीपी की सीनेटर शेरी रहमान ने बिलावल हाउस से ही ट्वीट किया, हमारी इफ्तार की चाय की प्याली से तूफान क्यों उठ गया? सिर्फ डिनर ही तो हुआ है और सरकार के प्रतिनिधियों की नींदें उड़ गई हैं।

अमर उजाला के पाठक इसे इस तरह से समझ सकते हैं मानो नरेंद्र मोदी की भाजपा के भोज में कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी सहित समूचा विपक्ष उपस्थित हो जाए। दरअसल पीपीपी और पीएमएल (एन) अतीत में एक दूसरे के कट्टर विरोधी रहे और एक दूसरे के खिलाफ चुनाव लड़ा है। जुल्फीकार अली भुट्टो और नवाज शरीफ की विचारधारा में जमीन आसमान का फर्क है। लेकिन इमरान खान की सरकार की आठ महीने की नाकामी और अक्षमता ने विपक्ष को एक मंच पर ला दिया है। इसे स्वीकार करते हुए बिलावल ने बाद में प्रेस कांफ्रेंस में कहा कि यह सच है कि पीपीपी और पीएमएल-एन में अनेक मुद्दों पर मतभेद हैं और चुनाव के दौरान ये उठे भी। भविष्य में होने वाले चुनावों में यह प्रतिद्वंद्विता दिखेगी, लेकिन अभी हम सरकार की नीतियों के खिलाफ एकजुट हैं।

बिलावल हाउस में पिछले रविवार को हुई दावत में मौजूद लोगों पर कोई नजर डाले तो साफ दिखता है कि पाकिस्तानी राजनीतिज्ञों की नई पीढ़ी आ गई है। पंजाब से ताल्लुक रखने वाली मरियम नवाज बिलावल भुट्टो से उम्र में बड़ी हैं, लेकिन अपने चचेरे भाई हमजा शाहबाज शरीफ की तरह वह भी पीएमएल-एन की नई पीढ़ी की नेता हैं। कुछ समय पहले उन्होंने अपनी दिवंगत मां कुलसूम के उप चुनाव के प्रचार की सफलतापूर्वक कमान संभाली थी। बिलावल भुट्टो पाकिस्तानी संसद में किसी भी राजनीतिक दल के सबसे युवा प्रमुख हैं। वह अच्छे वक्ता हैं और कई बार उनके भाषण उनकी मां बेनजीर भुट्टो और उनके नाना जुल्फीकार अली भुट्टो की याद दिला देते हैं। खैबर पख्तूनख्वा प्रांत के मोहसिन डावर और अली वजीर भी इफ्तार डिप्लोमेसी में शामिल हुए जो कि निर्दलीय जीतकर संसद पहुंचे। बलूचिस्तान से एक युवा चेहरा सरदार शफीक तरीन भी वहां थे, जो कि महमूद खान अचकाजई की पख्तून मिल्ली अवाम पार्टी के सांसद हैं। इस दावत के बाद मरियम नवाज शरीफ ने ट्वीट कर बिलावल का शुक्रिया अदा किया और लिखा कि वह वास्तव में एक शानदार मेजबान हैं।

पीपीपी और पीएमएल-एन के ये युवा नेता सक्रिय हैं, क्योंकि उनकी पार्टी के पिछली पीढ़ी के नेता या तो भ्रष्टाचार के मामलों में जेल में हैं या फिर भ्रष्टाचार से जुड़े मामलों में सुप्रीम कोर्ट की कार्रवाई का सामना कर रहे हैं। यह जानना अहम है कि विपक्ष अभी सरकार के खिलाफ कोई बड़ा आंदोलन नहीं करना चाहता, क्योंकि इससे देश में अस्थिरता आ सकती है। फिलहाल इमरान खान सुरक्षित महसूस कर सकते हैं, क्योंकि विपक्ष को पता है कि यदि वह सत्ता में आ भी गया तो नाकाम होती अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने का उसके पास फिलहाल कोई तरीका नहीं है।

समावेश होगा या नहीं होगा

प्रधानमंत्री को अपने मूल नारे 'सबका साथ सबका विकास' को फिर से दोहराने की जरूरत है। मुझे संदेह होता है कि क्या भाजपा ने यह चुनाव बहिष्करण के एजेंडे पर लड़ा। मैं उम्मीद करता हूं कि शासन की प्रक्रिया समावेशी होगी।

सत्रह मई, 2019 को मध्य प्रदेश के खरगौन में एक रैली को संबोधित करते हुए नरेंद्र मोदी ने कहा, कश्मीर से कन्याकुमारी तक, कच्छ से कामरूप तक, पूरा देश कह रहा है अब की बार, तीन सौ पार, फिर एक बार मोदी सरकार। सेफोलॉजी (चुनाव विश्लेषण) के लिहाज से वह सही थे, मगर ज्योग्राफी (भूगोल) के लिहाज से गलत। अंतिम तालिका ने साबित कर दिया कि उनकी चुनावी निशानेबाजी को पूरे दस में दस अंक मिले।

लिहाजा, मोदी, भाजपा और इस पार्टी के साथ ही उसके सहयोगी दलों के लाखों कार्यकर्ताओं के लिए बधाइयों का तांता लगा हुआ है। अब जबकि वह अपने दूसरे कार्यकाल की शुरुआत करने जा रहे हैं, मैं कामना करता हूं कि प्रधानमंत्री सरकार के संचालन और लोगों की सेवा करने में सफल हों।

नतीजों से दो दिन पहले 19 मई को एग्जिट पोल के नतीजे आए और उनमें से कम से कम दो ने भाजपा को 300 सीटें, उसके सहित गठबंधन को 350 सीटें और कांग्रेस को करीब पचास सीटें दी थीं। इन एग्जिट पोल ने आंकड़ों के नमूने और चुनावी भविष्यवाणियों को लेकर कुछ विश्वास कायम किया है!

प्रतिद्वंद्वी दृष्टिकोण

आज एक नई यात्रा शुरू हो रही है। ऐसी यात्रा जो कभी खत्म नहीं होगी। पांच वर्ष के अंतराल में थोड़ी देर का विराम है, और यात्रा फिर शुरू हो जाएगी। भारत पर शासन करने के अधिकार को लेकर पार्टी-दावेदारों में मतभेद हैं और होंगे। ये मतभेद बहु-दलीय लोकतंत्र की पहचान हैं, विशेष रूप से बहुवचन और विविधता भरे समाज वाले जीवंत लोकतंत्र की। कोई पार्टी इस विविधता को स्वीकार करने से इनकार कर सकती है और फिर भी एक राष्ट्रीय चुनाव जीत सकती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह विविधता वास्तविक नहीं है।

भारत को लेकर भाजपा का अपना दृष्टिकोण है : एक राष्ट्र, एक इतिहास, एक संस्कृति, एक विरासत, एक नागरिक संहिता, एक राष्ट्रीय भाषा और इस 'एकात्मकता' के ऐसे कई अन्य पहलू। कांग्रेस का अपना एक अलग दृष्टिकोण है : एक राष्ट्र, इतिहास की विभिन्न व्याख्याएं, अनेक उप इतिहास, अनेक संस्कृतियां, बहुल नागरिक संहिताएं, अनेक भाषाएं और विविधता के अन्य अनेक पहलू, जिनमें एकता की कामना हो। क्षेत्रीय दलों की अपनी दृष्टि है : राज्य वार दृष्टिकोण में अंतर हो सकता है, लेकिन उनके

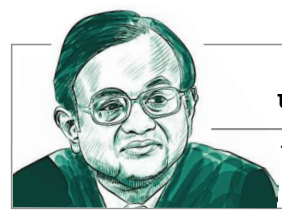

पी चिदंबरम

पूर्व केंद्रीय मंत्री

राजनीतिक बयानों को एक सूत्र जोड़े रखता है: वह यह कि उस राज्य के लोगों का इतिहास, भाषा और संस्कृति सर्वोच्च सम्मान के हकदार हैं और खासतौर से उस राज्य की भाषा को पोषित करना होगा और प्रमुखता देनी होगी।

भाषा की विशेषता

भाषा, खासतौर से एक भावनात्मक मुद्दा है। संस्कृति, साहित्य, कला और लोगों के जीवन का प्रत्येक पहलू भाषा के इर्द गिर्द ही घूमता है। यह बात न केवल तमिल लोगों के मामले में, बल्कि जो लोग तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, ओडिया, बांग्ला बोलते हैं और मैं समझता हूं कि अन्य सारी प्राचीन भाषाओं के बारे में भी सत्य है। राजनीति खासतौर से राजनीतिक संवाद में भाषा की विशेषता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मैं तमिल लोगों को अपेक्षाकृत अच्छे से जानता हूं। भाषा उनकी सभ्यता और संस्कृति के केंद्र में है। तमिल तमिल भाषी लोगों यानी तमिझन की पहचान है। कर्नाटक संगीत के तीन महान संगीतकारों का जन्म तमिलनाडु में हुआ, लेकिन उन्होंने अपने पद संस्कृत और तेलुगू में लिखे। तमिल इसई (संगीत) आंदोलन तमिल अभिमान और उसकी सर्वोच्चता स्थापित करने के प्रयास से ही उपजा था। मंदिरों में संस्कृत में ही अर्चनाएं होती थीं और अधिकांश मंदिरों के अर्चकों (पुजारियों) तथा श्रद्धालुओं की यह अब भी पसंदीदा भाषा है; तमिल अर्चना को सरकार ने वैकल्पिक रूप में मान्यता दी थी और इस नीति को सभी ने स्वीकार किया। हिंदू धर्म को हम आज जिस रूप में जानते हैं, वह शैववाद और वैष्णववाद था और तमिल इतिहास और धार्मिक साहित्य में इसे इसी रूप में दर्ज किया गया है। वास्तव में तमिल क्लासिक धर्म के वाहक होने के साथ ही उत्कृष्ट साहित्य के भी उदाहरण थे। इसके अलावा ईसाई और मुस्लिन विद्वानों और लेखकों ने तमिल भाषा को समृद्ध करने में महान योगदान दिया।

मैंने जो बात तमिलों और तमिल भाषा के बारे में कही वह केरल, कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल के लोगों और उनकी भाषाओं के बारे में भी सच है। आप जरा अपने मित्रों से पूछकर तो देखिए।

मुझे अब जरा विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोणों की ओर लौटने दीजिए। 2019 के चुनाव नतीजों को किसी एक दृष्टिकोण की अन्य दृष्टिकोणों पर निर्णायक पसंद नहीं कही जा सकती। इससे भी कहीं अधिक सच यह है कि धर्म कभी भी भाषा या संस्कृति से बढ़कर नहीं हो सकता।

21 वीं सदी में धर्मनिरपेक्षता

धर्मनिरपेक्ष राज्य का विचार भारत में पैदा नहीं हुआ। यह किसी आधुनिक लोकतंत्र और गणतंत्र की विशिष्टताओं में से एक है, इसकी सबसे अच्छी मिसालें हैं, यूरोप के देश। कोई भी यह नहीं कह सकता कि यूरोपीय देशों के लोग अधार्मिक हैं, लेकिन वे अपनी राजनीति और सरकार की व्यवस्था में धर्मनिरपेक्ष बने रहने के लिए संकल्पित हैं। मूलतः धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है, धार्मिक या आध्यात्मिक मसलों से निरपेक्ष। समय के साथ, खासतौर से यूरोप में इसका अर्थ राज्य और चर्च के बीच विभाजन के रूप में सामने आया। आधुनिक समय में, विशेष रूप से बहुलतावादी और विविध समाजों में, धर्मनिरपेक्ष का अर्थ है चरम स्थिति से बचना और समावेशी होना। मेरे इस तर्क का आशय भारत-और भारतीय सरकार तथा शासन के तमाम अन्य संस्थानों-के हमेशा समावेशी बने रहने से है।

क्या भाजपा ने अभी हुआ चुनाव समावेशन के मुद्दे पर लड़ा? मुझे संदेह है। खबरों के मुताबिक भाजपा के 303 सांसदों में से एक भी मुस्लिम समुदाय से नहीं है। इसके अलावा जो अन्य लोग खुद को बहिष्कृत समझ रहे हैं उनमें, दलित, आदिवासी, ईसाई, बटाईदार किसान और खेतिहर कामगार हैं। वास्तव में कुछ ऐसे वर्ग भी हैं जिन्हें विकास की प्रक्रिया से जाति, गरीबी, निरक्षरता, वृद्धावस्था, संख्या में कम होने या दूरस्थ होने के कारण अलग कर दिया गया। इसलिए प्रधानमंत्री को अपने मूल नारे 'सबका साथ सबका विकास' को फिर से दोहराने की जरूरत है। मुझे संदेह होता है कि क्या भाजपा ने यह चुनाव बहिष्करण के एजेंडे पर लड़ा। मैं उम्मीद करता हूं कि शासन की प्रक्रिया समावेशी होगी।

Licensed by The Indian Express Limited

राजनीति को समाज की चिंता क्यों नहीं

चिंता का विषय सिर्फ यह नहीं है कि सवर्ण समाज दलितों को उनके संविधान प्रदत्त अधिकार नहीं देना चाहता, चिंता की बात यह भी कि है कि हमारे राजनेता समाज के बारे में नहीं सोचना चाहते।

लोकसभा चुनाव के बाद नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा फिर सरकार बनाने जा रही है। यह चुनाव भाजपा की भारी जीत के साथ-साथ बेहद महंगे चुनाव अभियान के कारण भी चर्चा में रहा। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि चुनाव खर्च कम कर देश के नागरिकों की मूलभूत आश्यकताओं के लिए बजट बढ़ाया जाए, ताकि उनका जीवन स्तर सुधरे? जल संकट का समाधान, स्वास्थ्य सुविधाएं, शिक्षा की उपलब्धता और गुणवत्ता में सुधार करना सरकारों की ही जिम्मेदारी है। झारखंड के सिमडेगा जिले की 11 वर्षीय संतोषी कुमारी की भूख से हुई मौत को हम भूल नहीं सकते। उसने भात मांगते-मांगते दम तोड़ा था। राजनेताओं के अंधाधुंध खर्चे स्वतंत्रता सेनानियों की सादगी की परवाह नहीं कर रहे।

श्यौराज सिंह बेचैन

प्रोफेसर और दलित चिंतक

दलित उत्पीड़न की घटनाएं सामाजिक सौहार्द समाप्त कर रही हैं। पिछले दिनों राजस्थान के अलवर जिले में एक युवक के सामने ही उसकी पत्नी के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया। हद तो तब हो गई, जब चुनाव को देखते हुए उस खबर को दबाने की कोशिश की गई। लेकिन सोशल मीडिया पर वायरल हो जाने के कारण यह घटना संवेदनशील लोगों के लिए नागवार गुजरी, जिससे गैरदलित लोग भी दलित को न्याय दिलाने के लिए सड़कों पर आ गए। अंततः आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

बलात्कार की वह इकलौती घटना नहीं थी। ऐसी अनेक घटनाएं हैं, जो बताती हैं कि समाज में दलितों के प्रति न केवल घृणा मौजूद है, बल्कि उनके प्रति हिंसक प्रवृत्तियां भी सक्रिय हैं। दलित घोड़े पर चढ़कर अपनी बारात निकाल ले, इतना भी सवर्ण समाज को बर्दाश्त नहीं। ऐसी एक घटना दो साल पहले हाथरस में तब हुई थी, जब कई महीनों की कसरत के बाद प्रशासन ने एक दलित की बारात सेना के साये में निकाली थी। बेशक उस मामले में कानून ने मदद की थी, पर इससे यह भी पता चलता है कि सवर्ण समाज स्वेच्छा से दलित को सम्मानित जीवन जीने का अधिकार नहीं देना चाहता। हाल ही में गुजरात के मेहसाणा जिले के एक गांव में ऊंची जाति के पांच लोगों के खिलाफ एससी-एसटी ऐक्ट के तहत रिपोर्ट दर्ज कराई गई। दलितों का गुनाह यह था कि उन्होंने सवर्णों की तरह अपना दूल्हा भी घोड़ी पर सवार कर गांव में घुमा दिया। सवर्णों ने न केवल दूल्हे को घोड़ी से उतार कर बेइज्जत किया, बल्कि पंचायत में फरमान जारी किया कि दलितों को पूरे गांव में कोई खाद्य सामग्री नहीं दी जाए और किसी वाहन पर सवारी न करने दी जाए। दलितों से बदसुलूकी करने वाले लोग अपनी करतूत को इस कारण जायज ठहराते हैं कि दलित अपनी हद में नहीं रहते। वे ऊंची जातियों की बराबरी करने की काशिश करते हैं। इसका अर्थ यह कि दलितों को समता और स्वतंत्रता के वे अधिकार नहीं देने हैं, जो

भारतीय संविधान सभी नागरिकों को प्रदान करता है। अब इससे अधिक क्रूरता और क्या होगी कि पिछले दिनों ऊंची जाति के लोगों के सामने खाना खाने पर एक दलित युवक को पीट-पीटकर मार डाला गया। उत्तराखंड के एक गांव में एक दलित युवक रिश्तेदार की शादी में गया था। वहां सवर्णों के सामने कुर्सी पर बैठकर वह खाना खाने लगा, तो पास ही खा रहे लोगों ने उस दलित को जातिसूचक गालियां देते हुए तुरंत कुर्सी से उतरने के लिए कहा और उतरने में देर देखकर दलित पर हमला कर दिया। उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया, जहां उसकी मौत हो गई। एससी-एसटी ऐक्ट के तहत पुलिस ने मुकदमा तो दर्ज कर लिया, पर उसकी विधवा मां और बहन के लिए कमाकर सहारा देने वाला चला गया।

हमारे यहां अस्पृश्यता अमेरिका और अफ्रीका की गुलाम पृथा से अधिक अमानवीय है। हमारे देश को आजाद हुए सात दशक से अधिक हो गया, पर दलित दमन और बढ़ गया। अस्पृश्यता रूप बदल कर आज भी जारी है। हम उन देशों से भी प्रेरणा नहीं लेते, जिन्होंने जातिभेद की तरह नस्लभेद और रंगभेद को समाप्त कर दिया। हमारे यहां संविधान सम्मत व्यवहार नहीं हो रहा। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि लोगों की सामाजिक शिक्षा सकारात्मक और संविधान सम्मत हो। छात्रों को संविधान की मूलभूत शिक्षा अवश्य पढ़ाई जानी चाहिए। समता भाव जगाने वाली फिल्मों, कविताओं, कहानियों, चित्रकला, गीत, संगीत, नृत्य आदि को विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए। दलित आदिवासियों के साहित्य इस दिशा में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

अध्ययन बताता है कि दास पृथा केवल दासों के प्रयासों से समाप्त नहीं हुई। उसमें स्वामी वर्ग का भी योगदान था। दरअसल गोरे स्वामियों का एक बड़ा हिस्सा दास पृथा के विरोध में खड़ा हो गया था। पचास फीसद गोरे कालों की गुलामी के विरोध में खड़े हो गए और दास पृथा को उन्होंने समाप्त कर दिया। यही नहीं, अमेरिका ने उसके बाद कला, मीडिया, उद्योग, शिक्षा, साहित्य जैसे सभी क्षेत्रों में अफर्मेटिव ऐक्शन के तहत दलितों की भागीदारी सुनिश्चित कर और काम करने के अवसर देकर अपने देश को महाशक्ति बना दिया। दूसरी ओर, हमारे देश में दलितों और आदिवासियों को सेवाओं से बाहर रखने के लिए ही नए-नए तरीके अपनाए गए, जिससे देश को उनकी सेवाओं का लाभ नहीं मिल सकता। हमारे नेता केवल राजनीति में ही रुचि लेते हैं, समाज सुधार की चिंता उन्हें नहीं होती। चूंकि समाज में, साहित्य में, शिक्षा में उच्च मानवीय आदर्श नहीं हैं, इसलिए ऐसे वर्णभेदी समाज से निकला नेता भी लोकतांत्रित समता भाव का विकास नहीं करना चाहता, वह समाज में मौजूद भेदभाव का केवल राजनीतिक लाभ लेना चाहता है।